International Journal of Applied Research 2015; 1(13): 350-352

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(13): 350-352
www.allresearchjournal.com
Received: 01-10-2015
Accepted: 04-11-2015

डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय ढलियारा
कांगडा हि प्र.

Correspondence
डॉ. शिवदत्त शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय ढलियारा
कांगडा हि प्र.

संत रविदास और तुलसीदास

डॉ. शिवदत्त शर्मा

भारत में समय समय पर अनेक ऋृषियों मुनियों और धर्मात्माओं ने जन्म लिया तथा अपने दिव्य उपदेशों अथवा दर्शन पद्धति से मानव जाति के लिए प्रकाश स्तम्भ बनै। आज भारत की पहचान विश्व भर में इस लिए है कि भारत सदियों से विश्व गुरु रहा है। भारत का दर्शन शास्त्र विश्व के लिए सन्दर्भ ग्रंथ है। इसी से ही प्रकाश लेकर विश्व का प्रत्येक दर्शन आगे बढा है।

भक्ति काल हिन्दी साहित्य का स्वर्णिम काल कहा जाता है। इस काल को स्वर्णिम इस लिए भी कहते हैं कि इस काल में भक्ति, ज्ञान और कर्म का जो सामंजस्य मिलता है वह अन्यत्र प्राप्त नहीं होता।भारतीय दर्शन का सारांश रामचरितमानस भक्ति एवं ज्ञान का सागर है तो दूसरी ओर निराकार उपासना के माध्यम से सन्तों ने जो राह दिखाई है उसका अन्यत्र उदाहरण नहीं मिलता।इनमें सन्त रविदास का नाम उल्लेखनीय है। अपने समय के सौम्य सन्त के रूप में इन को सम्मान प्राप्त है। यहां तक कि कबीर ने भी इन्हें अपना बडा भाई माना है तथा उन्हें शिरोमणि कह कर सम्बोधित किया है।

इस लघु शोध पत्र का उद्देश्य इस काल के दो महत्व पूर्ण मनीषियों की विचार धारा का तुलनात्मक अध्ययन करना है।

''भक्तिकाल के समस्त कवि वैष्णव चिंतन से प्रभावित थे।[1] इसलिए अलग धारा दर्शनों तथा मान्यताओं के होने पर भी इन कवियों में दो मूल समानताएं देखीं जा सकती हैं। प्रथम सभी में प्रेम किसी न किसी रूप में प्रधान था, चाहे वह रहस्यवाद है, विनय है या माधुर्य भाव, भक्ति है। दूसरी, सभी कवि कम या अधिक मात्रा में तत्कालीन जीवन के वास्तविक संघर्षों को व्यक्त कर रहे थे।''[2]

इसी संदर्भ में सूरदास ने योग और निवृत्ति का स्थान भक्ति और आसक्ति को दिया, तुलसी ने ज्ञान और भक्ति का समन्वय किया तथा कबीर, रविदास आदि निर्गुणी कवियों ने निर्भय होकर सत्यों को तर्क की कसौटी पर परखा। जहां तुलसी औपचारिक विद्या में निष्णांत थे वहां रविदास जी में वही कला एवं सौन्दर्य दिखाई देता हैं

ब्रह्म–निरूपण

सन्त रविदास निर्गुण धारा के सन्त माने जाते हैं, उन्होंने उसी दृष्टिकोण से ब्रह्म को अजर अमर एक तथा अन्तर्यामी तथा सब के घट में वास करने वाला माना है, उन्होंने सगुण ब्रह्म के नामों का उल्लेख किसी और दृष्टिकोण से किया है। वे अपने राम को दशरथी राम नहीं कहते, जो निर्गुण परम्परा के अनुकूल है। दूसरी ओर तुलसी के राम दशरथी राम हैं जिसका वर्णन उन्होने सगुण धारा के अनुकूल किया है। फिर भी तुलसी ने सगुण और निर्गुण में सामंजस्य स्थापित कर इस विवाद को वैसे ही समाप्त कर दिया है। यह केवल दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि भक्त किस प्रकार की साधना में सहज है।

जीवात्मा

दोनों कवियों ने जीवात्मा को ईश्वर रूपी परमतत्त्व का अंश स्वीकार किया है। गुरू रविदास जी स्पष्ट कहते हैं कि अविवेक या मोह–माया वश होकर मनुष्य इस दुर्लभ जीवन का समुचित उपयोग नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप यह सर्वोत्तम योनि व्यर्थ की हो जाती हैः–

> ''दुर्लभ जनमु पुन पल पाइओ, बिरथा जात अविवेक।
> राजे इन्द्र समसरि ग्रिह आसन, बिनु हरि भगति कहहु किह लेखे।''[3]

गोस्वामी तुलसीदास यद्यपि सगुण धारा के चिंतक कहे जाते हैं तथापि मनुष्य जीवन की दुर्लभता में उन्हे भी पूरा विश्वास है। गुरू रविदास जी की तरह उनका दावा है कि नर देह में ही जीव की

सफलता निहित है।
''बड़े भाग मानुष तनु पावा, सुर दुर्लभ सभ ग्रंथहि गावा।।
सावन क्षाम मोच्छ कर द्वारा, पाइन जेहि परलोक संचारा।।''[4]

रामः

कण–कण में रमण करने वाला तत्व राम है इसलिए यह शब्द परमात्मा की अनेक संज्ञाओं में सम्मिलित हैं। जहां गुरू रविदास जी ने ब्रह्म–विषयक अनेक संज्ञाओं यथा–भगवान, गोपाल, महेश, दामोदर, मुरारि माधव आदि का प्रयोग किया है, वहीं उन्हे 'राम' संज्ञा भी दी हे। उनके राम ब्रह्म है। वे केवल दशरथ पुत्र राजकुमार नहीं हैंः–

''रविदास हमारो रामजी, दशरथ करि सुत नाहि,
राम हमउं में रमि रहयो, विसव कुंटबह माही।''[5]

गुरू रविदास जी के अनुसार जिन के हृदय में वह राम समाया रहता है वह मनुष्य स्वयं भगवान बन जाता है। उसे काम क्रोध आदि पंच विकार नष्ट नहीं कर सकते।

''रैदास कहै जाके हृदय, रहै रैन दिन राम,
सौ भकता भगवत सम, क्रोध न व्यापै काम।''[6]

अतः रविदास जी परम पुरूष राम का स्मरण अवलोकन श्रवण, मनन कर राममय हो जाना चाहते हैंः–

''चित सिमरन करंउ नैन अवलौकन, सुवन वाणी, सुज सपूरि रखियो।''
मन सु मधुकर करउ, चरन हृदय सरेउ रस न अमृत राम नाम भाखौ।''[7]

दूसरी ओर तुलसीदास जी निःसंदेह दशरथ सुत 'राम' की कथा करते हैं। वह इसमें राम के शील, शक्ति, सौन्दर्य तथा कर्त्तव्य का समन्वय प्रस्तुत करते हैं। परन्तु राम कोई साधारण राजकुमार नहीं, वे पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ है।

''अविगत अकथ अपार नेति नेति निगम कहा।
जस देखन तुम्ह देखनि हरि, विधि हरि संभु नवावनि।''[8]

यद्यपि तुलसी रचित रामचरितमानस में राम मनुष्य रूप में चलते–फिरते हैं तथापि वे मन इन्द्रियों और बुद्धि से परे सच्चिदानंद स्वरूप[9] सत्य[10] नित्य शाश्वत[11] अज[12] व्यापक[13] अनादि[14] अखण्ड[15] तथा अविनाशी तत्व है।
इसी के साथ–साथ परम पुरूष के समस्त लक्षण दीनदयाल भक्तवत्सल, प्रणतपाल, पतितपावन, आदि गुण तुलसी के राम में विद्यमान हैं।

''कह लगि कहौ दीन अगनित जिन्ह की तुम बिपत्ति निवारी।
कलिगन ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी।।''[17]

माया

जहां संतों ने मनुष्य जीवन को दुर्लभ कहा है और इसकी सार्थकता प्रभु भजन में की है। मनुष्य आत्मा की आवाज सुनने की अपेक्षा प्रायः मन के हाथों का खिलौना बन जाता है। इसी प्रकार संसार की मिथ्या वस्तुओं के साथ वह अपना संबंध स्थापित कर लेता है।
गुरू रविदास के अनुसारः–

''बरजि हो बरजि बीठले, माया सब जग खाया।
महाप्रवल सब ही तन, यह सुर–नर–मुनि भरमाया।''[18]

गोस्वामी तुलसीदास जी का दृष्टिकोण भी यही है। वे मानते हैं कि जीव तो परम सत्य ब्रह्म का अंश है, किन्तु माया के वश में तोते या बन्दर की तरह बन्धन में पड़ा नाचता गाता हैः–

''ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुख रासी।
सो माया बस भयसु गोंसाईं, बंध्यों कीर मरकट की नाई''[19]

इसलिए तुलसी माया को प्रपंच[20] मैं तेरा–मेरा[21] जीव को बांधने वाला पाश[22] विश्व को नचाने वाली[23] अविद्या[24] दुःख का कारण[25] तथा दर्पण प्रतिबिम्ब की भांति असत्[26] मानते हैं।

भक्ति

यद्यपि गुरू रविदास एवं तुलसीदास दोनों महापुरूष अलग–अलग धाराओं से संबंधित हैं तथा उनका दार्शनिक चिंतन एक–दूसरे से भिन्नता लिए हुए है, तथापि संसारिक बंधनों से मुक्त होने का साधन दोनों की दृष्टि में प्रभु मुक्ति ही है। इसलिए वे सभी विशेषताएं जो गुरू जी की भक्ति–पद्धति में भी उपलब्ध है।
गुरू रविदास जी अनुभवी महात्मा थे। भक्त–साधक होने के नाते उन्होनें स्वयं वह स्थान प्राप्त कर लिया था, जो किसी भी भक्त का लक्ष्य हो सकता है। वह कर्मकाण्डी एवं दिखावे की भक्ति के पक्ष में नहीं थे–

''खटु करम तुल संजुगतु है, हरि भक्ति हिरदै नांहि।
चरनारबिंद न कथा भावै, सुपच तुलि समान।''[27]

गुरू रविदास जी की मान्यता है कि भक्ति तो दत्तचित, प्रभु स्मरण, ध्यान और प्रभु में लीनता का नाम है। इसके लिए आत्मत्याग और समर्पण की आवश्यकता हैः–

''भगति ऐसी सुनहु रे भाई, आई भगति वाई बड़ाई।।
कहां भयो नाचै अरू गाये, कहॉ भयो तप कीनै।।
कहा भयो जे चरण परवालै, जो लौं परम तत नहीं चीन्है।।
कहा भयो जे मुडं मुडायो, वहु तीरथ ब्रत कीनै।।
स्वामी दास भगत अरू सवेग, जो परमतत नहीं चीनै।।
कहै 'रविदास' तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सौ पावै।।
तजि अभिमान मेरि आपा पर, पिपलिक होइ चुनि खावै।।''[28]

गुरू रविदास जी की भक्ति प्रेम की साधना है। भक्त की प्रभु के लिए प्रेम की तीव्रता हमेशा बनी रहती है। वे सांसारिक पदार्थों तथा प्राणियों के मोह के ऊपर उठकर परमात्मा से प्रेम जोड़ता है, क्योंकि गुरू जी अनुसार परमेश्वर के बिना
कोई भी सच्चे प्रेम योग्य नहीं है–

''साची प्रीति हम तुम सिऊ जोरी।
तुम सिऊ जोरि अवर सिऊ तोरी।।
माधवे तुम न तोरहु तउ हम नही तो रहि।
तुम सिऊ तोरी कवन सिऊ जा रहि।।[29]

गुरू रविदास की अपेक्षा संत तुलसीदास जी अत्यधिक सपाट हैं। उनका तो सीधा दावा है कि जल मथने से भले ही मक्खन की प्राप्ति हो जाए, रेत से तेल निकलने की भी संभावना हो सकती हे, परन्तु मनुष्य जीवन के बंधनों से मुक्ति, परमेश्वर की भक्ति के बिना संभव नहीं है। सांसारिक बंधनों को तोड़ने का सामर्थ्य भक्ति की शक्ति में है।

''बारि मथे धृत होइ बरू सिकता ते बरू तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अमेल।।''[30]

तुलसी दास जी राम चरणों में प्रेम सब साधनों का परम साधन

मानते है। यह पुनीत प्रेम जिसे मिला, उसके कोटि–कोटि दुःख, कलेश कट जाते हैं। सत्य तो यह है मानव मुक्ति और प्रभु मिलन का एक मात्र आधार प्रभु ही है–

''संजम, जप, तप, नेम, धरम, वृत भेषज समुदाइ।
तुलसी दास भव रोग राम–पद प्रेम हीन नहि जाई।।[31]

तुलसीदास जी का कथन है कि प्रभु प्रेम स्वयं प्रभु कृपा की ही देन है। किसी जीव का इस पर कोई अधिकारिक दावा नहीं है। रामचरित मानस में तुलसी काग–भुशुंडी तथ्य को आलोकित करते हैं।

''राम कृपा सुनु खगराई। जानिन जाइ राम प्रभुताई।।
जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होई नहि प्रीति।।
प्रीति बिना नहिं भगति दिठाई। जिमि खग पति जल ले चिकनाई।।

प्रेम का यह स्वरूप समर्पण से ही उपलब्ध होता है। आत्म त्याग और 'स्व' विस्मरण तथा प्रभु इच्छा के प्रति पूर्णता समर्पण ही भक्ति के आधार होते हैं। गुरू रविदास जी भी इसे स्वीकारते हैं–

''तनु मनु अरपउ पूज चरावउ।
गुरू परसादि निरंजन पावउ।।''

सत्य तो यह है कि कथन की शैली यद्यपि कितनी भी अलग हो प्रभु प्रेम और मिलन उत्कंठा सभी हरि भक्तों में बराबर ही होती है। गुरू रविदास हो या संत तुलसीदास दोनों अनुभवी महापुरूष और सच्चे भक्त थे, परमात्मा की साधना के द्वारा साक्षात् कर, वे परमात्मा के लिए समर्पित थे। अतः इन दोनों महात्माओं की सोच और व्यवहार में विद्वान लोग चाहे कितनी भी भेद रेखाएं खींचे परन्तु मेरी दृष्टि से 'हरि सेवक' स्वयं 'हरि सा' होता है।

सन्दर्भ सूचि

1 डा0 डॉ0 तारानाथ बाली, भक्तिकालीन साहित्य की प्रांसगिकता
2 हजारी प्रसाद द्विवेदी ''हिंदी साहित्यकी भूमिका'', पृ0 117
3 आ0 ग्रं0 – राग आसा–पृ0 487
4 मानस–7:42:4
5 रवि0 दर्शन – साखी–1
6 वाणी0 साखी–4
7 आ0 ग्र0 पद – 32 – संत रैदास
8 मानसः 2: 216–1–3
9 मानस 2: 234–3–2
10 मानस–7:47
11 मानस–1:117:3–4
12 मानस–6:111:6
13 मानस–7:72:3
14 मानस–6:111:7
15 मानसः–6:111:7
16 मानस–6:111:15
17 विनय पत्रिका–पद 166
18 पं0 यू0 पद–135
19 मानस 7:116
20 मानस–2:33:6
21 मानस – 3:15:2
22 मानस– 1:200:4
23 मानस–1:202:4
24 मानस–1:36:1
25 मानस – 136:1
26 मानस
27 आदि ग्रंथ–पृ0 1124
28 पं0 यू0 पद – 143
29 आदि ग्रंथ– पृ0 658
30 मानस 7:122
31 विनयपत्रिका, पद – 81